पुराणों की दृष्टि में दूसरा अध्याय

श्रीभगवान् भगवती लक्ष्मी को श्रीमद्भगवद्गीता के दूसरे अध्याय के माहात्म्य का वर्णन एक कथा के माध्यम से कर रहे हैं:

लक्ष्मी! दक्षिण दिशा में स्थित पुरन्दरपुर नामक वेदवेत्ता ब्राह्मणों के नगर में देवशर्मा नामक एक विद्वान् ब्राह्मण भी रहते थे। वे अतिथियों के पूजक, स्वाध्यायशील, वेद-शास्त्रों के विशेषज्ञ, यज्ञों का अनुष्ठान करने वाले और तपस्वियों के सदा ही प्रिय थे। उन्होंने उत्तम द्रव्यों के द्वारा अग्नि में हवन करके दीर्घकाल तक देवताओं को तृप्त किया, किंतु उस धर्मात्मा ब्राह्मण को कभी सदा रहने वाली शान्ति न मिली। वे परम कल्याणमय तत्त्व का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से प्रतिदिन प्रचुर सामग्री के द्वारा सत्य संकल्प वाले तपस्वियों की सेवा करने लगे। इस प्रकार बहुत समय तक शुभ आचरण करते रहने के अनन्तर उनके समक्ष एक त्यागी महात्मा प्रकट हुए जो पूर्ण अनुभवी, आकांक्षारहित तथा शान्तचित्त थे और परमात्म चिन्तन में संलग्न रहते हुए सदा आनन्दविभोर रहते थे। देवशर्मा ने नित्य-सन्तुष्ट महात्मा से प्रश्न किया : 'महात्मन्! मुझे शान्तिमय स्थिति कैसे प्राप्त होगी? महात्मा ने देवशर्मा को सौपुर ग्राम के निवासी मित्रवान का, जो बकरियों का चरवाहा था, परिचय दिया और कहा, 'वही तुम्हें उपदेश देगा'।

देवशर्मा ने सौपुर ग्राम पहुँचकर ग्राम के उत्तर भाग में स्थित विशाल वन में नदी के किनारे एक शिला पर मित्रवान को बैठे देखा। मित्रवान के नेत्र आनन्दातिरेक से निश्चल हो रहे थे तथा वे अपलक दृष्टि से देख रहे थे। वह स्थान आपस का स्वाभाविक वैर छोड़कर एकत्र हुए परस्पर विरोधी जन्तुओं से घिरा था तथा वहाँ उद्यान में मन्द-मन्द वायु बह रही थी। मृगों के झुंड शान्तभाव से बैठे थे और मित्रवान दया से भरी आनन्दमयी मनोहारिणी दृष्टि से पृथ्वी पर मानो अमृत छिड़क रहा था। मित्रवान के इस रूप को देखकर देवशर्मा का मन प्रसन्न हो गया और वे उत्सुक होकर बड़े विनय के साथ मित्रवान के निकट गये।

मित्रवान ने भी अपने मस्तक को किंचित् नवाकर देवशर्मा का सत्कार किया। जब मित्रवान के ध्यान का समय समाप्त हो गया, उस समय देवशर्मा ने अपने मन की बात पूछी : 'महाभाग! मैं आत्मा का ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ। मेरे इस मनोरथ की पूर्ति के लिए मुझे किसी ऐसे उपाय का उपदेश कीजिए, जिसके द्वारा सिद्धि प्राप्त की जा चुकी हो'।

देवशर्मा की बात सुनकर मित्रवान ने एक क्षण तक कुछ विचार किया और फिर कहा- 'विद्वन! एक समय की बात है, मैं वन के भीतर बकरियों की रक्षा कर रहा था। इतने में ही एक भयंकर व्याघ्र पर मेरी दृष्टि पड़ी, जो मानो सबको ग्रस लेना चाहता है। मैं मृत्यु से डरता था, इसलिए व्याघ्र को आते देख बकरियों के झुंड को आगे करके वहाँ से भाग चला, किंतु एक बकरी तुरंत ही सारा भय छोड़कर नदी के किनारे उस बाघ के पास बेरोक टोक चली गयी फिर तो व्याघ्र भी द्वेष छोड़कर चुपचाप खड़ा हो गया। उसे इस अवस्था में देखकर बकरी बोली : **''व्याघ्र! तुम्हें तो अभीष्ट भोजन प्राप्त हुआ है। मेरे शरीर से मांस निकालकर प्रेम पूर्वक खाओ न। तुम इतनी देर से खड़े क्यों हो? तुम्हारे मन में मुझे खाने का विचार क्यों नहीं हो रहा है?''**

व्याघ्र बोला : **''बकरी! इस स्थान पर आते ही मेरे मन से द्वेष का भाव निकल गया। भूख-प्यास भी मिट गयी। इसलिए पास आने पर भी अब मैं तुझे खाना नहीं चाहता।''**

व्याघ्र के यों कहने पर बकरी बोली : **''न जाने मैं कैसे निर्भय हो गयी हूँ। इसमें क्या कारण हो सकता है? यदि तुम जानते हो तो बताओ।''** यह सुनकर व्याघ्र ने कहा : **''मैं भी नहीं जानता। चलो, सामने खड़े हुए इन महापुरुष से पूछें।''** ऐसा निश्चय करके वे दोनों वहाँ से चल दिये। उन दोनों के स्वभाव में यह विचित्र परिवर्तन देखकर मैं बहुत विस्मय में पड़ा था। इतने में ही उन्होंने मुझसे ही आकर प्रश्न किया। वहाँ वृक्ष की शाखा पर एक वानरराज थे। उन दोनों को साथ लेकर मैंने भी वानरराज से प्रश्न किया। मेरे प्रश्न करने पर वानरराज ने आदरपूर्वक कहा : **''अजापाल! सुनो, इस विषय में मैं तुम्हें**

प्राचीन वृत्तान्त सुनाता हूँ। यह सामने वन के भीतर जो बहुत बड़ा मन्दिर है, उसकी ओर देखो। इसमें ब्रह्माजी का स्थापित किया हुआ एक शिवलिंग है। पूर्वकाल में यहाँ सुकर्मा नामक एक ब्राह्मण महात्मा रहते थे, जो तपस्या में संलग्न होकर इस मन्दिर में उपासना करते थे। वे वन से फूलों का संग्रह कर लाते और नदी के जल से भगवान् शंकर को स्नान कराकर उन्हीं से उनकी पूजा किया करते थे। इस प्रकार आराधना का कार्य करते हुए सुकर्मा यहाँ निवास करते थे। बहुत समय के बाद उनके समीप किसी अतिथि का आगमन हुआ। सुकर्मा ने भोजन के लिए फल लाकर अतिथि को अर्पित किए और कहा : **विद्वन! मैं केवल तत्त्वज्ञान की इच्छा से भगवान् शंकर की आराधना करता हूँ आज इस आराधना का फल परिपक्व होकर मुझे मिल गया, क्योंकि इस समय आप जैसे महापुरुष ने मुझ पर अनुग्रह किया है।''**

सुकर्मा के ये मधुर वचन सुनकर तपस्या के धनी महात्मा अतिथि को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने एक शिलाखण्ड पर गीता का दूसरा अध्याय लिख दिया और सुकर्मा को उसके पाठ एवं अभ्यास की आज्ञा देते हुए कहा : **''ब्रह्मन् सुकर्मा! इससे तुम्हारा आत्म-ज्ञान सम्बन्धी मनोरथ अपने-आप सफल हो जाएगा।''** यों कहकर वे अतिथि तपस्वी सुकर्मा के सामने ही उनके देखते-देखते अन्तर्ध्यान हो गये। सुकर्मा विस्मित होकर उनके आदेश के अनुसार निरन्तर गीता के द्वितीय अध्याय का अभ्यास करने लगे। तदनन्तर दीर्घकाल के पश्चात् अन्तःकरण शुद्ध होकर उन्हें आत्मज्ञान की प्राप्ति हुई। फिर वे जहाँ-जहाँ गये वहाँ-वहाँ का वन शान्त हो गया। उनमें शीत-ऊष्ण और राग-द्वेष आदि की बाधाएँ दूर हो गयीं। इतना ही नहीं, उन स्थानों में भूख-प्यास का कष्ट भी जाता रहा तथा भय का सर्वथा अभाव हो गया। यह सब द्वितीय अध्याय का जप करने वाले सुकर्मा ब्राह्मण की तपस्या का ही प्रभाव समझो।

मित्रवान ने देवशर्मा से कहा : **''वानरराज के यों कहने पर मैं प्रसन्नतापूर्वक बकरी और व्याघ्र के साथ उस मन्दिर की ओर गया। वहाँ जाकर शिलाखण्ड पर लिखे हुए गीता के द्वितीय अध्याय को मैंने देखा**

और पढ़ा उसी की आवृत्ति करने से मैंने तपस्या का पार पा लिया है। अतः भद्रपुरुष! तुम भी सदा द्वितीय अध्याय की ही आवृत्ति किया करो। ऐसा करने पर आत्मज्ञान, शाश्वत शान्ति और मुक्ति तुमसे दूर नहीं रहेगी।''

श्रीभगवान् कहते हैं : ''प्रिये! मित्रवान के इस प्रकार आदेश देने पर देवशर्मा ने उनका पूजन किया और उन्हें प्रणाम करके पुरन्दपुर की राह ली। वहाँ किसी देवालय में पूर्वोक्त आत्मज्ञानी महात्मा को पाकर उन्होंने यह सारा वृत्तान्त निवेदित किया और सबसे पहले उन्हीं से द्वितीय अध्याय को पढ़ा। उनसे उपदेश पाकर शुद्ध अन्तःकरण वाले देवशर्मा प्रतिदिन बड़ी श्रद्धा के साथ द्वितीय अध्याय का पाठ करने लगे। तबसे उन्होंने अनवद्य परमपद को प्राप्त कर लिया''।[1]

1- पद्म पुराण, उत्तरखण्ड।